

चुभते स्त्री प्रश्न और स्त्री विमर्श



हबीब खान

सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग,
राजकीय बाँगड़ महाविद्यालय,
डीडवाना

सारांश

तुलसीदास औरत को ताड़न का अधिकारी साबित करते हो, लेकिन सभ्यता विमर्श में नारी की स्थिति विश्व पटल पर मुख्य घटक के रूप में उभरी है। समाज में औरत की दशा से सभ्यता का आकलन किया जाता है। यह संसार भले ही उसे कमजोर समझकर अत्याचार करता रहे, लेकिन उसका सप्रेम आग्रह पुरुष से क्या नहीं करवा सकता! लेकिन औरत हर सभ्यता में दलित और अधिकार प्राप्ति में हाशिए पर ही रही है। वैदिक व्यवस्था से लगाकर आधुनिक नारी तक शोषण के तरीके बदल गए हैं बाकी उसकी स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं आ सका है। चाहे उदारवादी व्यवस्था हो या समाजवादी और पूँजीवादी स्वतंत्र चेतना का विकास नहीं हो सका है। चाहे महाभारत की अम्बा-अम्बालिका हो, त्रेता की सीता और आधुनिक युग की प्रभा खेतान और तसलीमा नसरीन औरत होने की सजा जरूर मिली है। मनुस्मृति से लेकर पवित्र कुरान तक बढ़त आदमी को ही है। समाज में समानता तो दूर पूजा स्थल तक असमानता का वातावरण है। दक्षिण भारत में मंदिर में कानूनी समानता देने पर भी औरत मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकी। अभी समानता का स्तर प्राप्त करने के लिए समय और लगेगा।

औरत जागरूक होकर समानता के लिए संघर्ष करती है तो व्यवस्था उसका दुरुपयोग शुरू कर देती है। बाजारवाद और उपभोक्तावाद ने भूमण्डलीकरण में औरत को हथियार बनाकर व्यवस्था पर कब्जा कर लिया है और व्यवस्था का उपयोग आज भी पुरुष ही कर रहा है। व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा जब तक खत्म नहीं होगी, लालची इन्सान को सोने का पहाड़ भी मिल जाये तो भी संतुष्ट नहीं होगा। आज संसार में औरत की स्वतंत्रता के नाम पर इज्जत का नुकसान और जिस्म का गलत इस्तेमाल हो रहा है और औरत कारोबारियों के हाथों का खिलौना बनकर रह गई है जिसका उसको एहसास भी नहीं है। कॉरपोरेट जगत सुनहरे सपने दिखाकर जाल फँक रहा है। स्त्री मुक्ति का मार्ग शिक्षा, स्वावलम्बन और अधिकारों के प्रति सचेतना के द्वारा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के बदलाव या सामंजस्य से ही संभव हो सकेगा, जिसमें प्रजातंत्र शासन और न्यायपालिका की विशेष भूमिका से संभव हो सकेगा। जिस दिन पुरुष स्त्री की भाँति समस्या पर विचार करेगा तब ही स्त्री की गरिमा और गौरव पुनः लौट पायेगा। प्रेमचन्द ने सही कहा था, स्त्री की सहानुभूति हार को भी जीत में बदल देती है जब तक पुरुष यह महसूस नहीं करेगा, तब तक जमीनी हकीकत बदलना संभव नहीं होगा, केवल विमर्श चलता रहेगा।

मुख्य शब्द : सभ्यता विमर्श, स्त्री मुक्ति, जमीनी हकीकत, छलावे की भट्टिया, निशानदेही, मानसिकता, पितृसत्ता, बेलगाम, नजरिया, समकालीन, उपभोग।

प्रस्तावना

काँटेदार झाड़ी को फूल बनाने वाली औरत के बारे में जब अरस्तू यह कहता है कि कुछ गुणवत्ताओं की कमी के कारण औरत बनती है तो बड़ी चिन्ता होती है। महाकवि तुलसीदास जिसमें आठ अवगुणों की मौजूदगी पाते हैं और घोषणा करते हैं कि “जिमि स्वतंत्र होय बिगड़हि नारी” तो फिर नारी के अधिकार और हक की बात करने वाला कौन है? मध्यकाल का क्रांतिकारी संत कबीर ‘हरि को भजे सो हरि का होई’ का उद्घोष करने वाला स्त्री को माया रूप मानता है जो ‘नरक के द्वार’ तक ले जाती है और प्लूटो जैसा दार्शनिक ईश्वर को इसलिए धन्यवाद देता है कि वह स्वतंत्र पैदा हुआ है और ईश्वर ने उसे पुरुष बनाया, तो प्रश्न यह उठता है कि दुनियाँ की आधी आबादी स्त्री क्या गुलाम और गुलामी के लिए पैदा हुई है? चाहे दुनियाँ के धर्मग्रंथ, आचार संहिताएँ और दार्शनिक कुछ भी कहे लेकिन इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि देवता, मुनि और पैगम्बर का वजूद बिना औरत के संभव नहीं था।

प्रारम्भिक काल से आजतक कई व्यवस्थाएँ बदली है परन्तु नारी जुल्म की चक्की में पिसती रही है। जुल्म के स्वरूप बदलते रहे हैं। उसके लिए छलावे की भट्टियाँ तैयार होती रही है और उसमें धकलने के लिए भिन्न-भिन्न प्रपंच रचे गए हैं। कभी उसकी संवेदनाओं से खेला गया है, कभी महिमा मंडित कर ठगा गया है और कभी व्यवस्थाओं के नाम पर अग्नि स्नान कराया गया है, कभी स्वतंत्रता के नाम पर देह व्यापार को पनपाया गया है। 21 वीं सदी की नारी अपने वजूद के लिए संघर्ष कर रही है फिर भी शेक्सपियर के शब्दों में यही कहना पड़ता है 'कमजोरी तेरा ही नाम औरत है।'

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध में स्त्री के सवालात और स्त्री विमर्श को सही समझकर, भूमण्डलीकरण के दौर में प्रपंचों से सावधान करते हुए स्त्री विमर्श की दिशा की निशानदेही करना है। ज्ञानधारा में कुछ योगदान के साथ शोधपत्र को निम्न शीर्षकों में बाँटकर समझने का प्रयास किया गया है।

1. स्त्री विमर्श की पीठिका
2. स्त्री विमर्श की विचारधाराएँ
3. स्त्री विमर्श का इतिहास
4. स्त्री प्रश्न और स्त्री विमर्श
5. निष्कर्ष

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध में विवरणात्मक पद्धति से सूचनाएँ संकलित कर समस्या मूलक प्रविधि के आधार पर विश्लेषणात्मक-आलोचनात्मक अध्ययन पद्धति को अपनाया गया है।

स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसे बना दिया जाता है— सीमोन द बुआर

स्त्री विमर्श की पीठिका

स्त्री विमर्श स्त्री की गरिमा और गौरव दिलाने का विमर्श है। स्त्री के परम्परागत छवि का और पहचान से अलग नई पहचान, एक नई छवि का निर्माण करना जिसमें स्त्री के अस्तित्व, उसके अधिकारों, उसकी अस्मिता को एक मानवीय रूप में प्रतिष्ठित करने के संघर्ष को स्त्री विमर्श कहा जा सकता है। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप औरत को उत्पादन श्रम क्षेत्र में प्रवेश मिला और भारत के स्वाधीनता के दावे को आर्थिक आधार मिला। औरत की स्वाधीन सत्ता पुरुषों के आँख की किरकिरी बन गई। नारी का लक्ष्य पुरुष के बराबर अधिकार प्राप्त करना है तथा दूसरा चरण यह है कि पुरुष के अलावा वह भिन्न व्यक्तित्व बनना चाहती है, जो उसकी अस्मिता से जुड़ा प्रश्न है। हमारे यहाँ नारी सशक्तिकरण के मार्ग में स्त्री का विवाह, परिवार, प्रजनन और पुरुष पर निर्भरता से मुक्ति की तरफ जाने वाला रास्ता इतना आसान नहीं है इसमें अनेक पैचीदगियाँ हैं। इस स्तर पर किसी समाज में हजारों सालों से बन रहे चरित्र को बदलने का आग्रह आसान काम नहीं है। इस रास्ते को तय करने के लिए लम्बे धीरज, अध्यवसाय और त्याग-तपस्या की जरूरत है और नारीवाद को सफल करने के लिए आत्मनिर्भरता का रास्ता पकड़कर पुरुष की आश्रयता छोड़नी होगी। तब फिर गुलामी का रास्ता बंद होगा।

हमारे मूल्य मानवीय मूल्य न होकर पितृसत्तात्मक मूल्य है क्योंकि उनका चरित्र स्त्री विरोधी है। इसलिए उन्हें मानवीय मानना आधी जनसंख्या का अपमान है जिसमें उनके हितों को दरकिनार कर दिया है। जहाँ मूल्यों के नाम पर केवल दमन है। जिनको सीमोन द बुआर ने उलटने का प्रयास किया है। सीमोन द बुआर ने लिखा, 'यदि किसी जाति को लगातार हीन अवस्था में रखा जाये तो सही बात है कि वह हीन ही रहेगी किन्तु मानवीय स्वतंत्रता इस सीमा को तोड़ सकती है। आप अधिकार तो दीजिए उपयोग करना स्वयं सीख जायेगी। सच्चाई तो यह है कि दमनकर्ता कभी भी आगे बढ़कर अकारण उदारता नहीं दिखायेगा, किन्तु कभी तो दलित के विद्रोह और कभी स्वयं सुविधा प्राप्त वर्ग के अपने विकास से नई परिस्थितियाँ जन्म लेती है। . . . एक दिन वह पुरुष के बराबर सामाजिक और आर्थिक समानता पायेगी जिसके कारण उसकी आन्तरिकता में एक नया रूपान्तरण घटित होगा।' (गरिमा श्रीवास्तव, प्रतिरोध की संस्कृति : स्त्री आत्मकथाएँ)

परिवार की मूल व्यवस्था स्त्री की रचनात्मक और बौद्धिक शक्ति को नष्ट किया है महादेवी वर्मा ने अपने लेखन में सदियों से चली आ रही चुप्पी को अनुभवों, दुःखों, तकलीफों को व्यक्त कर तोड़ा है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में सारे विज्ञापन स्त्री देह के बहाने माल बेच रहे हैं। साम्प्रदायिक दंगों में स्त्रियों के बर्बर त्रासद यथार्थ है। यह हमारी विकृत मानसिकता ही है कि एक विधवा अशुभ होती है और सती को देवी बनाती है। वेश्याएँ लाइसेंस ले कर वेश्यावृत्ति करती है और भोगने वाला भद्र पुरुष ग्राहक बनकर जाता है वह दोषी नहीं है। (जान स्टुअर्ट मिल, सब्जेक्शन ऑफ वूमेन(1873) पृ. 105)

स्त्री विमर्श की विचारधाराएँ

जे. एस मिल ने लिखा है कि "स्त्री पुरुष का संबंध मैत्री पर आधारित होना चाहिए प्रभुत्व पर नहीं। विवाह कानून में सुधार और राजनैतिक स्त्री मताधिकार पर बल देकर सशक्तिकरण के माध्यम से समान अवसर देने की पैरवी की। वर्तमान में नारीवाद की तीन विचारधाराएँ प्रचलित हैं।

उदारवादी

लैंगिक उत्पीड़न, श्रम का लैंगिक विभाजन और आर्थिक वर्गीय ढाँचे में आपसी रिश्ते नहीं तलाश सके।

आमूल्य परिवर्तनवादी

छोटे सुधारों से स्त्री की स्थिति में कोई ज्यादा सुधार नहीं होने वाला है क्योंकि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों का शोषण स्त्री होने की वजह से है। अतः स्त्री शरीर तथा समाज के आपसी सम्बन्ध की जरूरत है। स्त्रियों के सुधार के लिए विद्वान मातृसत्तात्मक समाज की भी वकालत करते हैं।

समाजवादी विचारधारा

पितृसत्तात्मक समाज और मार्क्सवादियों के विश्लेषण में समन्वय का प्रयास है। इसमें लिंग आधारित श्रम विभाजन और मूल परिवार की अवधारणाओं को समाप्त कर मानवीय समानता पर आधारित नवीन व्यवस्था

का निर्माण किया जावे तथा पूँजीवादी व्यवस्था को खत्म कर समाजवादी व्यवस्था कायम की जावे।

वर्तमान साहित्य पर विचार किया जाये तो पितृसत्तात्मक उपेक्षाओं, अंधताओं से अपने ढंग से लड़ता हुआ अस्तित्व में आया। राष्ट्रीय आन्दोलन में पुरुषों ने स्त्रियों के लिए बेहतरीन साहित्य लिखा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'बालबोधिनी', जयशंकर प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी नाटक स्त्रियों को केन्द्र में रखकर लिखा गया। प्रेमचन्द ने निर्मला, सेवासदन तथा जैनेन्द्र ने सुनीता और त्यागपत्र स्त्रियों को केन्द्र में रखकर लिखा उपन्यास साहित्य है। कृष्णा सोबती, उषा प्रियवंदा, मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग आदि लेखिकाओं ने स्त्री समस्या पर जमकर लिखा और आत्मकथाओं में अपने दर्द को अंकित किया। सीमोन दी बुआर 'स्त्री उपेक्षिता' स्त्री विमर्श के लिए मील का पत्थर है। सविता सिंह ने सही ही लिखा है, 'स्त्री के जीवन की भिन्नता को पहचाना उसके अनुभवों की सत्यता को स्वीकार करना और उनका सहानुभूतिपरक विश्लेषण शायद ये नींव की ईंटे है जिन पर स्त्रीवादी विमर्श का भवन खड़ा किया जा सकता है।'³(हिन्दी साहित्य की स्त्री आलोचना, सविता सिंह)

जॉन स्टुअर्ट मिल का मानना है कि सदियों पुराने पुरुष वर्चस्ववादी मूल्यों, विचारों, संस्थाओं के टूटने की प्रक्रिया लम्बी है। 'इस प्रक्रिया की शुरुआत के लिए स्त्री पुरुषों के बीच पूर्ण कानूनी समानता, स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता, शिक्षा और रोजगार के समान अवसर तथा सामाजिक-राजनीतिक सक्रियताओं में स्त्रियों की भागीदारी को अनिवार्य बुनियादी शर्त मानते हैं।'⁴ स्त्रियों को अपनी समस्याओं के साथ स्वयं आगे आना होगा, गुलामी की मानसिकता को त्यागना होगा। अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा और पुरुष समाज को भी अपनी मानसिकता बदलनी होगी।

स्त्री विमर्श का इतिहास

रोमन साम्राज्य की भाँति प्राचीन भारत में भी बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी। पुरुष अनेक पत्नियाँ रखेगा पर पत्नी के एक ही पति होगा। यह पितृसत्तात्मक सामन्ती समाज की विशेषता थी। नजदीक के रिश्तों में शारीरिक सम्बन्ध सामान्य बात थी। (मनु के बारे में प्रसिद्ध है कि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री शतरूपा के गर्भ से पैदा किया था।⁵ (पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू लॉ, डी. ए मित्र पृ. 200) महाभारत का समाज नियोग प्रथा को मान्यता देता था। पाण्डवों का जन्म इसका उदाहरण है। वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक स्त्री को बराबर का अधिकार नहीं मिला और निर्णयन प्रक्रिया से बाहर रखा गया। राजा हरिश्चंद्र ने विश्वामित्र के कोप से बचने के लिए परिवार को दास बना दिया, भीष्म पितामह अम्बा को शक्ति के बल पर हस्तिनापुर ले आये, ययाति ने अपनी पुत्री माधवी को विश्वामित्र शिष्य गालव को दान में दे दिया।

सामन्ती समाज में औरत पर बंदिशें इतनी थी कि वह ढकी रहे, घर में बंद रहे और आदमी के कब्जे में रहे। सामन्ती व्यवस्था में औरत को जीवन साथी चुनने का अधिकार नहीं था। उच्च वर्ग में सतीप्रथा का प्रचलन था। राजसत्ता की सामन्ती प्रणाली के उदय से स्त्री केवल

सम्पत्ति के अधिकार से वंचित ही नहीं स्वयं सम्पत्ति का हिस्सा बन गई।

वैश्विक स्तर पर बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध को महिला जागरण युग तथा उत्तरार्द्ध को महिला प्रगतियुग के नाम से जाना जा सकता है। पश्चिमी समाज से शताब्दियों की दासता, हीनता, प्रताड़ना और असंतोष से तड़पती नारी जाति ने जब मुक्ति के लिए जागृत होकर संघर्ष का बिगुल बजाया और अपनी माँगों और संघर्षों से सम्बद्ध होकर आन्दोलन का रूप दिया जिसको नारी मुक्ति आन्दोलन के नाम से पुकारा गया। पितृसत्तात्मक व्यवस्था और पुरुष सत्ता से मुक्ति के समन्वित रूप को विमेन लिबरेशन मूवमेंट का नाम दिया गया। सन् 1960 के बाद नारीवादी चिन्तन मुक्ति आन्दोलन और नारीवादी साहित्य विचार सम्पूर्ण विश्व में फैलने लगा। भारत में नारीवादी आन्दोलन 1970 के आसपास शुरू हुआ। यह आन्दोलन नारी की प्रतिष्ठा और समाज में समान स्थान प्राप्त हेतु क्रियाशील है। स्त्री मुक्ति और स्त्री अस्मिता के सवाल को औरत मात्र की मुक्ति और अस्मिता का मुद्दा बनाकर जो महानगरों की चकाचौंध से दूर, खेत-खलियानों, मिलों, खदानों और बंद घरों की सीलन भरी कोठरियों में काम करती है। इन नारी लेखिकाओं, कथाकारों ने एक बेहतर मानवीय सामाजिक संरचना में उसकी सही हैसियत की प्रतिष्ठा दिलाने का काम किया।

नारी चेतना में नारी मुक्ति के साथ नारी स्वातंत्र्य, अस्मिता एवं स्वाभिमान को भी परिभाषित किया जा सकता है। स्त्रीवादी लेखन स्त्री की जैविक हीनता को खारिज करता है। नारी चेतना को आधुनिक रूप में पश्चिम की देन माना जाता है। नारी भोगवाद के दर्शन से मुक्ति पाना चाहती है। वह अपने होने का अर्थ ढूँढती है। स्त्रियों का संघर्ष पितृसत्तात्मक सत्ता के खिलाफ है। उसका संघर्ष निजता प्राप्त करने का प्रयास है उस जमीन की तलाश है जिसमें पितृसत्ता की बू न आती हो। हिन्दी लेखिकाओं की रचना में स्त्री की गरिमा मान-मर्यादा और अस्मिता के प्रश्न उभरते हैं। प्राचीन रिवाजों को बरकरार रखकर भी समाज सुधार के जरिये आधुनिक चेतना का निर्माण संभव है। स्त्री की दासतापूर्ण अवस्था को सामाजिक सुधारों के जरिये तोड़ा जा सकता है।

स्त्री को एक स्त्री के विशिष्ट अनुभवों से गुजरना पड़ता है ऐसे अनुभव पुरुष को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। मासिक धर्म, गर्भधारण, शिशुजन्म, शिशुस्तनपान आदि अनुभव केवल स्त्री ही कर सकती है इस अनुभव की एक भाषा होती है। स्त्रीत्व, स्त्री शरीर, स्त्री संस्कृति, स्त्री भाषा का व्यक्त करना स्त्री की विशिष्ट समीक्षा है। 'साहित्य यदि स्त्री के सहयोग से शून्य हो, तो उसे आधी मानव जाति के प्रतिनिधित्व से शून्य समझना चाहिए। पुरुष के द्वारा नारी का चरित्र अधिक आदर्श बन सकता है परन्तु अधिक सत्य नहीं। विकृति के अधिक निकट पहुँच सकता है परन्तु यथार्थ से अधिक समीप नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है परन्तु नारी के लिए अनुभव। अपने जीवन का जैसा सजीव चित्रण वह हमें दे सकेगी जैसा पुरुष बहुत साधना के उपरान्त ही शायद ही दे सके।'⁶ (मैनेजर पांडेय, श्रृंखला की कड़ियाँ और मुक्ति की राह)

स्त्री विमर्श

सारी उदारता, आधुनिकता और वैज्ञानिक सोच के बावजूद क्या व्यक्ति बेटी के जन्म को उतने उल्लास से ग्रहण कर पाता है? आज भी जो बेटे की चाहत रखते हैं और बेटी का जन्म हो जाता है तो उनके चेहरे उतर आते हैं और मायूसी छा जाती है। क्या बच्ची अपने जन्म के लिए स्वयं जिम्मेदार है? अपने रंग-रूप के लिए दण्डनीय क्यों है? गरीब परिवार में जन्म होने पर, विवाह नहीं होने पर, विवाह हो गया तो ससुराल में हर मुसीबत के लिए, सन्तान नहीं होने पर और माँ की बेटी बनने पर, पति के स्वर्गवास पर अपशकुनि क्यों है? क्या सामाजिक प्रताड़नाओं को भोगने के लिए बाध्य नहीं है? कितनी विडम्बना है कि सौ अपराधी बच जाये लेकिन निर्दोष को सजा न हो वाला न्याय दबी जुबान से भी अफसोस तक जाहिर नहीं करता। यातनाओं की भट्टी में पकने वाली और अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन करने वाली औरतें भी अपनी पुत्रियों को संस्कार वही देती है जो पितृसत्ता को मजबूत करते हैं। राजस्थान में मृत राजा की औरतें सामूहिक आत्महत्या को जौहर का नाम देकर गौरवान्वित होती थी और जनसमुदाय देवी का दर्जा देकर उनसे आशीर्वाद माँगता था।

महाभारतकालीन समाज पुरुष वर्चस्व वाला समाज है। स्त्री जहाँ कुलवृद्धि और वंशवृद्धि का माध्यम है चाहे काशी कन्या अम्बा और अम्बालिका हो या गांधारी और माद्री। एक कन्या के साथ दासियों का दिया जाना राजा की स्वतः ही दासी हो जाती है। क्षत्रिय पिता और दासी माँ की सन्तानों को सूत कहा जाता था विदुर से लेकर कर्ण और युयुत्सु तक इनकी लम्बी परम्परा है। उन दासियों और दासी पुत्रों की क्या हैसियत रही है यह विचारणीय बिन्दु है। पति को जो दृष्टि सौभाग्य नहीं वह मुझे भी नहीं चाहिए कहकर आँखों पर पट्टी बाँधने वाली गांधारी भीष्म से देवी का पद भले ही प्राप्त कर लिया हो, महा पतिव्रता का खिताब भी हासिल कर लिया हो और पति की भाँति अंधी होकर महाभारत का विनाश का सत्य देखा नहीं, भुगत लिया। क्या इसे विवेक सम्मत निर्णय कहा जा सकता है? जिसने अपने बच्चों का मुँह देखा नहीं, वह युद्धभूमि में जाकर अपने मृत बच्चों की पहचान का करुण और विडम्बनापूर्ण प्रयास करती है यह कितना विवेक सम्मत निर्णय है विचार की जरूरत है। पाँच पतियों की पत्नी द्रौपदी मन से अर्जुन को पति स्वीकार करती है और युधिष्ठिर के प्रति प्रायः व्यंग्य और विद्रूप की भाषा बोलती है। यह व्यवहार स्त्री के लिए कितना न्यायसंगत है?

तुलसी के नीति बोध में अंधा, बहरा, क्रोधी, मूर्ख कैसा भी पति हो, स्त्री के लिए सदा पूजनीय है। अनुसूइया सीता को ऐसे पति की सेवा न करने पर “नारी पाव जमपुर दुःख नाना” यमलोक में दुःख भोगने की बात कहती है। यह कैसा विमर्श है? ‘पुरुष मनोहर निरखति नारी’ किसी मानसिक रोगिणी कामांध नारी पर नहीं, सामान्य रूप से स्त्री पर बेबुनियाद आरोप है। यह आरोप कितना सत्य है और औरत को क्या संदेश देता है विचारणीय है। आज का विकसित मनोविज्ञान स्त्री और पुरुष के स्वभाव में विशेष अन्तर नहीं मानता है। युगों के

काम दमन ने स्त्री के के यौन-स्वभाव को बहुत ही सीमित दायरे में सक्रिय रहने दिया है। सांस्कृतिक विकास ने पुरुष को इतना सम्य तो बना दिया है कि वह अपने नजदीक के रिश्तेदारों के प्रति यौन आकर्षण का अनुभव नहीं करता है। ऐसी टिप्पणियाँ स्त्री को अपने स्तर से गिराने वाली हैं।

मीरां को स्त्री होने के कारण कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा क्योंकि उस युग में नारी की स्वतंत्रता सीमित थी। लोकमर्यादा के प्रतिकूल जाती थी। मीरां का मुक्त आचरण और व्यवहार उस युग के गले उतरने वाला नहीं था। जग सुहाग को मिथ्या मानने वाली मीरां ने अविनाशी को चुना था। मीरां को जो कष्ट दिए गए उनके काव्य में दर्द भरे जीवन की झाँकियाँ हैं। यह वही दर्द है जिसने मीरां को मीरां बनाया और गरल पीकर अमृत देना सिखाया। निश्चय ही दर्द की अनुभूतियों ने समझ के द्वार खोले और वेदना अपनी चरम पराकाष्ठा पर पहुँचकर अपने समय के पहले के सवाल पैदा किए। सन्तों से ज्ञान प्राप्त करना, राजमहल की चारदीवारी छोड़ देना, तत्कालीन परम्पराओं का विरोध, (सती न होना) में देखा जा सकता है।

हिन्दी साहित्य का दरबारी साहित्य में नारी के प्रेम को कोई स्थान नहीं मिल सका है जैसा अनुभूति सूर और मीरां के साहित्य में मिलती है। इन्होंने नारी पीड़ा को मानसिक धरातल पर विकसित किया था। मिलन-बिछुड़न की स्वाभाविक अभिव्यक्ति अन्यत्र मिलना मुश्किल है। स्त्री सामाजिक रूप से पितृसत्तात्मक समाज द्वारा शोषित होती रही है। पितृसत्ता एक सामाजिक व्यवस्था है जिसने स्त्री को साधन के रूप में इस्तेमाल किया है। उसके नाम, रूप, जाति, गोत्र सब पुरुष से जाकर जुड़ जाते हैं। पुरुषोचित अहंकार स्त्री के शोषण की भट्टी तैयार करता है। यह विडम्बना ही है कि भंवरी देवी को मारने में अन्य पुरुषों के साथ उसका पति भी शामिल था। कोई व्यक्ति आखिर किस लालच के वशीभूत होकर उसे मारने और मरवाने के लिए तैयार हुआ और गायब की रिपोर्ट लिखवाकर घड़ियाली आँसू भी बहाता रहा। जब रक्षक ही भक्षक बन जावे तो क्या कहा जा सकता है?

सेक्सुलिटी को सेलिब्रेट करने वाले जिस सफलता का लालच देकर सेक्स के तड़के के लिए तैयार करते हैं उसमें तथाकथित पवित्रता औरत की ही नष्ट होती है। क्योंकि आदमी तो कभी अपवित्र होता ही नहीं है। पवित्रता और अपवित्रता का पाठ केवल सेक्स से क्यों जुड़ा है। चरित्र के दोहरे मानदण्डों को औरत कब तक सहन करती रहेगी। दुश्मन के चंगुल से किसी तरह छूट कर आने वाला गुलाम अपनी वफादारी के लिए इनाम का हकदार है लेकिन इस तरह लौटी औरत किसी भी तरह स्वीकार नहीं की जायेगी। पता नहीं, उसके साथ कहाँ क्या कुछ हो चुका होगा।⁷

सीमोन द बुआर ने पुरुष की मानसिकता का कितना सही नक्शा खींचा है, ‘पुरुष जब नारी को अपनी सम्पत्ति के रूप प्राप्त करता है तो उसकी यही इच्छा रहती है कि नारी केवल देह ही रहे। पुरुष नारी के शरीर में नारी के व्यक्तित्व के विकास को नहीं देखना चाहता। वह अपने में सीमित रहे, संसार में अन्य किसी से संलग्न

न रहे। वह जिस कामना को जाग्रत करती है उसे तृप्त करें।⁸

किसी लड़की पर बदचलन का ठप्पा यदि पुरुष समाज लगा देता है। इस मामले में पुरुष नहीं, इस विचार को पोसने का काम महिलाएँ बखूबी करती हैं। महादेवी वर्मा ने लिखा है, यदि औरत को नीचा दिखाना हो तो स्त्रियाँ इस मामले में पुरुषों से भी चार हाथ आगे रहती हैं। औरतें औरतों की किस तरह पुरुषवादी हथियारों से पीटती हैं, दहेज और घरेलू हिंसा के उदाहरण इसे अच्छी तरह से साबित करते हैं।⁹ (भैरवी देवी और औरतों की च्वाइस, क्षमा शर्मा)

इससे बड़ा मजाक क्या हो सकता है कि जिस समाज में पुरुषों के लिए देह और दिमाग बेचने और खरीदने की खुली आजादी हो, उस समाज में नारी देह और दिमाग के बारे में शुचिता और नैतिकता की बातें क्यों उठाई जाती हैं? नारी देह मुक्ति का प्रश्न नारी विमर्श का मामला बना दिया है। नारी के सब रूप मर्दों को स्वीकार है केवल पत्नी बनने का इन्कार चिन्ता का विषय है। पत्नी बनने का मामला बच्चा जनने का इन्कार से जुड़ा हुआ है कल्पना की जाये तब क्या होगा जब सब नारियाँ मिलकर बच्चा जनने से इन्कार कर दें तब पुरुष सत्ता की पुरुषार्थ मादकता का क्या होगा? उत्तराधिकारविहीन पुरुष क्या निरीह नहीं जान पड़ता? परिवार पितृसत्तात्मक का प्रमुख स्तम्भ है। जो विवाह संस्था के द्वारा विकसित होता है। पुरुष स्त्री को अपनी सम्पत्ति समझते हुए उसकी भौतिकता और प्रजनन क्षमता पर पूर्णतया नियंत्रण रखना चाहता है। ताकि उसे सत्ता हस्तांतरण में विश्वास बना रहे कि उसका उत्तराधिकारी अपना वंशज है। धर्म, संस्कृति के माध्यम से वह यौन शुचिता और कर्तव्यपरायणता के प्रति आग्रही बना रहता है। विवाह संस्था नारीवादी विचारकों की दृष्टि में उत्पीड़क रूप है इसलिए उन्हें प्रजनन, गर्भधारण और गर्भपात आदि कोख संबंधी मामलों में स्वनिर्णय के लिए संघर्ष करना पड़ा।

परिवार के टूटने बिखरने की त्रासदी औरत को ही सहन करनी पड़ती है। तलाक का एक कारण यह भी होता है कि पत्नी उसे समय नहीं देती है और यह शिकायत बच्चे को भी होती है कि वह उपेक्षित महसूस करता है। सामन्तवादी मानसिकता के संवाहन, धर्म और संस्कृति की जड़ समाज में इतनी मजबूत है कि स्वावलम्बी स्त्री भी विवाह संस्था में बँधते ही रूढ़ियों को सहर्ष स्वीकार कर लेती है। देह मुक्ति का तात्पर्य अपनी स्वेच्छा से दैहिक व्यापार करना नहीं है। पितृसत्ता के नये रूप में शिक्षा संस्थान, कॉर्पोरेट जगत, फिल्म, विज्ञापन, उद्योग में औरतों का ऐसा वर्ग पैदा हो गया है जिसके लिए वर्जनाओं की कोई शृंखला नहीं है। उपभोक्ता संस्कृति से प्रभावित होकर वह पैसा कमाने में लिए बेलगाम बढ़ना चाहती है। स्वावलम्बन स्त्री का औजार है जिसके जरिये वह पुरुष से बराबरी की बात करती है। अब स्त्री की योग्यता का पैमाना उसकी शिक्षा और आर्थिक निर्भरता है। परन्तु यह विडम्बना है कि धन कमाने के बावजूद धन का उपभोग वह अपनी इच्छा से नहीं कर सकती है। बाहर कमाने और घर संभालने दोहरा दायित्व का भार डाल दिया है।

जैविक भिन्नता की दुहाई देकर स्त्री को कमजोर बनाया जाता है। पुरुष का प्रतिफल यह प्रयास रहता है कि स्त्री पर उसका नियंत्रण बना रहे। सत्ता के सभी संस्थानों—परिवार—धर्म—समाज—संस्कृति और कलात्मक बोध में भी पुरुष वर्चस्वता का निदर्शन होता है। पितृसत्ता की केन्द्रीय धुरी परिवार है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में बाजारवाद ने देहमुक्ति के सवाल का उलझाया है। सौन्दर्य ही स्त्री का सर्वाधिक विश्वसनीय औजार है। यह सौन्दर्य औद्योगिक सभ्यता की लेबोरेटरी से ढलकर निकला है। पूँजीवाद और बाजारवाद से पितृसत्ता ने गठबन्धन कर लिया है जिससे समाज की नैतिकता गायब हो गई है। स्त्री का शरीर चित्रण जिस प्रकार पुरुषों को प्रभावित करता है वैसा स्त्रियों को प्रभावित नहीं करता है। सुधीर पचौरी ने सही लिखा है, 'इस पद्धति की एक विशेषता स्त्री का नितान्त अलग किस्म का पाठ संभव करना है। बलात्कार की किसी रिपोर्ट, या वृत्तान्त, कथा को जब कोई स्त्री होते हुए पढ़ती है तो उसका पाठानुभव किसी मर्द के उस अंश के पाठ से न केवल भिन्न होगा बल्कि विपरीत होगा।'¹⁰ (उत्तरआधुनिक साहित्यिक विमर्श, सुधीर पचौरी)

सामन्तवाद से पूँजीवाद के सफर में केवल संयुक्त परिवार की जगह एकल परिवार का रूप ही तो बदला है। व्यवस्था में सुधार नहीं हुआ है। बहुत कम प्रतिशत औरतें जो ऑफिस जाती हैं, विज्ञापन, सिनेमा, सौन्दर्य प्रतियोगिता में भाग लेने मात्र से स्त्री सशक्तिकरण का आधार नहीं माना जा सकता है। बाकी 90 प्रतिशत बहुसंख्यक स्त्रियों की स्थिति में जमीनी सुधार नहीं आ सका है। तथाकथित 10 प्रतिशत औरतें जिनको हम सशक्त मानते हैं क्या वे वास्तव में सशक्त हैं? सवाल यह भी है कि इन स्त्रियों की छवियों को देखने का पुरुषवादी दृष्टिकोण क्या है? आदमी का नजरिया, कम्पनियों में दी जाने वाली जिम्मेदारी, निर्णयन में भूमिका से हैसियत का आँकना सशक्तिकरण के मापदण्ड माने जा सकते हैं लेकिन बड़ा अफसोस है कि शायद ही किसी कम्पनी के रिसेप्शन पर भद्दी शक्ल की प्रौढ़ औरत को नौकरी दी गई हो, एयर होस्टेज के लिए अधिक उम्रवाली कम सुन्दर को दी गई हो, किसी औरत को कम्पनी के बाहर की जिम्मेदारी दी गई हो जो क्षेत्र कार्य से जुड़ी हो। निर्णयन के कार्यों में भी लोगों से जुड़े पुरुष कार्मिकों की भूमिका ही महत्वपूर्ण होती है।

विश्व सुन्दरी का ताज जिस महिला को पहनाया जाता है क्या बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ उसके ताज से कई गुणा लाभ नहीं कमाती हैं? इस पर कोई मीडिया रिपोर्ट नहीं दिखाता है। विश्व सुन्दरी प्रतियोगिता के नाम पर ऐसी स्त्री छवि का निर्माण किया जाता है जिसके माध्यम से प्रसाधन उद्योग को पनपाया जाता है, उपभोक्ताओं को आकर्षित किया जाता है और देह व्यापार के लिए अच्छे चेहरे खोजे जा सकें जिससे अकूत मुनाफा कमाया जा सके। संजीव कुमार जैन ने क्या ही नक्शा खींचा है, 'देह बेचना और मुनाफा कमाना जीवन नहीं पाशविकता है। पूँजीवाद इसी पाशविकता को बढ़ाता है पैदा करता है। विज्ञापन में आई स्त्री सिर्फ देह होती है, चेतनाविहीन देह, संवेदनाहीन देह, रिश्ते और जीवन से रहित देह। माँ सिर्फ

वक्ष ही नहीं होती, और न पत्नी सिर्फ योनि। लेकिन विज्ञापन और पूँजीवाद स्त्री को सिर्फ वक्ष और योनि मात्र बना देता है और उसकी तिजारत करता है।¹¹ (संजीव कुमार जैन, स्त्री विमर्श और पूँजीवाद का दुष्प्रक्र, पृ. 106)

वास्तव में भूमण्डलीकरण ने औरत को बेड़ियों में ऐसे जकड़ कर रखा है कि आजादी का भ्रम फैलाया जा रहा है। आजादी के नाम पर वस्तुओं के विक्रय की जमीन तैयार की है। चेतना को स्वाभाविक प्रक्रिया को मानसिक अनुकूलन के माध्यम से बदलने में टेलीविजन और संचार साधनों ने पूरे वातावरण को बदल दिया है। अर्चना वर्मा ने सही लिखा है, 'समाजवाद की नींव में दरार डालने के साथ ही इसने पूँजीवाद संवेदनाओं का ह्रास नहीं तो और क्या है? युद्धों को स्क्रीन पर देखकर अधिकांश विश्व रोमांचित हो उठता है। देश के एक हिस्से में आई प्राकृतिक तबाही के उपरान्त समूचा देश त्योहार और जश्न मनाता है। भूख और नंगई से उद्देलित होने के बजाय उदासीकरण और खुली अर्थव्यवस्था का राग अलापा जाता है। पर्दे पर बलात्कार के दृश्यों को देख लोगों में घृणा और आक्रोश की जगह सेक्सुअल सिहरन उत्पन्न होती है।'¹² (अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, सं. राजेन्द्र यादव, पृ. 207)

युवतियों के शिक्षित और स्वावलम्बी होने के बावजूद बेटी के पिता के दहेज देना पड़ता है। दहेज लेना-देना समाज का स्वीकृत मूल्य बन चुका है और विडम्बना यह भी है कि पितृसत्तात्मक मूल्यों के अनुकूलन स्थापित करती लड़की चुप रहती है। समकालीन समाज में सबसे ज्यादा चिन्ता का विषय स्त्री सुरक्षा का है। बलात्कार शर्मनाक मौत है जिस क्रूर कृत्य की पीड़ा से औरत गुजरती है। पुरुष समाज अल्प और उत्तेजक वस्त्रों का कारण बताकर समस्या पर पर्दा डाल देता है, 'सुरसामुखी सवाल यह भी है कि स्त्री कब तक डरती रहेगी और समाज कब तक डराता रहेगा। देह मुक्ति का प्रश्न शीशे के किरचों की भाँति हो गया है। जन्मदायी स्त्री के जननांग को पुरुष समाज मनका की भाँति वक्त बेवक्त जाप ही नहीं करता उसकी भौतिकता पर आक्रमण और हिंसक भी होता रहा है।'¹³ (शशिकला त्रिपाठी : स्त्री प्रश्न:सरोकार एवं चुनौतियाँ)

कसूर किसी का और सजा दूसरा भुगते ऐसा अन्याय बलात्कार में होता है। पूरे परिवार की प्रतिष्ठा दाँव पर लग जाती है। सुदर्शना द्विवेदी ने सही ही लिखा है, चाँद सूरज पर राहु ग्रहण लगता है तो कुछ देर बाद वे मुक्त हो जाते हैं पर बलात्कार का राहु यदि किसी नारी के जीवन पर ग्रहण लगा दे तो ऐसी लम्बी काली अंधकार की त्रासद चादर उसे घेरती है जिससे ताउम्र वह निकल नहीं पाती। उसका तन लुटता है मन छटपटाता है मगर समाज के किसी कोने से उसके लिए सहानुभूति, सम्मान और प्यार के बोल नहीं निकलते।'¹⁴ (बचपन से बलात्कार)

तथाकथित समाज में स्वतंत्र सोच रखने वाले मर्दों की मानसिकता का नमूना देखने लायक है। 'महेश भट्ट ने एक टी.वी. डिस्कशन के दौरान कहा कि स्त्री की च्वाइस का मामला है कि वह सफलता किन शर्तों पर हासिल करती है। यदि बॉडी के यूज से उसे सफलता मिलती है तो क्या बुरा है। यह दो लोगों के आपसी सहमति

का मामला है। यह वही महेश भट्ट है जब अर्थ फिल्म बनाई गई थी तब किसी ने इनसे पूछा कि आपकी पत्नी इस तरह से किसी और के पास चली जाये और फिर आपके पास आना चाहे तो आप क्या करेंगे? तब उन्होंने बहुत गर्वपूर्वक कहा कि यदि मेरी पत्नी शादी की मर्यादा को तोड़ेगी तो मैं उसे कुल्हाड़े से काट दूँगा।'¹⁵ (भैवरी देवी और औरतों का च्वाइस, क्षमाशर्मा)

निष्कर्ष

सामन्ती व्यवस्था से पूँजीवादी व्यवस्था में आ जाने से स्त्री की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो सका है क्योंकि कंधे बदलने से निर्भर नहीं हुआ जाता है। स्त्री विमर्श का लक्ष्य होना चाहिए व्यवस्था की संरचना को बदलना और एक समता मूलक मानवीय व्यवस्था का विकल्प तैयार करना। ऐसी व्यवस्था जिसमें श्रम, उत्पादन, वितरण का सबको बराबर हक मिले। प्राकृतिक स्रोतों पर व्यक्तिगत कब्जा न हो, वर्चस्व की राजनीति को अंत हो, स्त्री समान वितरण वाली व्यवस्था में मुक्त हो सकती है जब तक व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा रहेगी स्त्री जुल्म की चक्की में पिसती रहेगी। जब तक नारी विमर्श को सभ्यता विमर्श की तरह खड़ा नहीं किया जाता तब तक नारी विमर्श देह का विमर्श बना रहेगा। सभ्यता विमर्श से ही यह बात निकल सकती है कि नर-नारी के संबंध पति-पत्नी के रूप और परिवार गढ़ने वाली रीतियाँ कौनसी उचित और समानतावाली हैं और मित्रतापूर्ण व्यवस्था पर है जब तक विचार नहीं किया जाता तब तक स्त्री स्वतंत्रता का विमर्श बेमानी है।

पाद टिप्पणी

1. आलोचना (स. नामवर सिंह) अंक-35 अक्टू-दिसम्बर 2009 पृ. 89
2. पत्रिका उत्पल, डॉ. सुधीर सोनी पृ. 21
3. आलोचना (स. नामवर सिंह) अंक 51, अक्टूबर-दिसम्बर 2013, पृ. 109
4. जॉन स्टुअर्ट मिल, स्त्रियों की पराधीनता, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ. 30
5. आलोचना (स. नामवर सिंह) अप्रैल जून 2009, पृ. 64
6. तद्भव पत्रिका(स. अखिलेश) अंक 25, मार्च 2012, पृ. 90
7. अरविन्द जैन, औरत होने की सजा, राजकमल पैपरबैक्स प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ. 23
8. सीमोन द बुआर, स्त्री उपेक्षिता, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2004, पृ. 85
9. कथाक्रम (शैलेन्द्र सागर) अंक 52 अप्रैल-जून 2012, पृ. 58
10. पत्रिका अनभै, अंक 3, जुलाई-सितम्बर 2004
11. आलोचना (स. नामवर सिंह) अंक 48, जनवरी-मार्च 2013, पृ. 106
12. आलोचना (स. नामवर सिंह) अंक 48, जनवरी-मार्च 2013, पृ. 109
13. कथाक्रम (स. शैलेन्द्र सागर, जुलाई-सितम्बर 2016, पृ. 54
14. अरविन्द जैन, औरत होने की सजा, राजकमल पैपरबैक्स प्रकाशन, दिल्ली 2002, पृ. 90
15. कथाक्रम (स. शैलेन्द्र सागर) अंक 52, अप्रैल-जून 2012, पृ. 57